International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(1): 75-77

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(1): 75-77
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 08-11-2018
Accepted: 20-12-2018

डॉ0 गीता परिहार
एसोसियेट प्रोफेसर, प्रभारी संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ0 गीता परिहार
एसोसियेट प्रोफेसर, प्रभारी संस्कृत विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

पातञ्जल योगदर्शन में 'ईश्वर' का स्वरूप

डॉ0 गीता परिहार

सारांश
महर्षि पतञ्जलि 'ईश्वर के स्वरूप' को निम्न सूत्र से स्पष्ट करते हैं :–
''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।''
अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अस्पृष्ट (रहित, असम्बद्ध) एक विशेष प्रकार का पुरुष 'ईश्वर' कहलाता है। व्यासदेव लिखते हैं कि –
''अविद्यादयः क्लेशाः – सपुरुष पिशेष ईश्वरः ।''
ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक आशय आदि से रहित है तथा जय – पराजय, कैवल्य तथा बन्धन आदि से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ईश्वर की सामर्थ्य की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। ईश्वर 'तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति।
महर्षि पतंजलि 'ईश्वर की सर्वज्ञता' को अधोलिखित सूत्र से स्पष्ट करते हैं –
''तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।''
श्रुति आदि शास्त्रों में 'पुरुषविशेष' के 'शिव', ईश्वर आदि संज्ञाविशेष प्रसिद्ध हैं। महर्षि पतंजलि ईश्वर की त्रैकालिक गुरुता को अधोलिखित सूत्र से स्पष्ट करते हैं –
''पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।''
शारदीकार तथा योगवार्त्तिककार ईश्वर की त्रैकालिक गुरुता के सम्बन्ध में व्यासदेव के विचारों का ही समर्थन करते हैं । व्यासदेव ईश्वर की प्रणव रूप की वाचकता के संदर्भ में लिखते हैं कि –
''वाच्यं ईश्वरः प्रणवस्य .... प्रति जानते ।''
अर्थात् प्रणव का वाच्य ईश्वर है अर्थात् प्रणव वाचक है और ईश्वर वाच्य है। प्रणव एवं ईश्वर में वाच्य वाचक सम्बन्ध है।
इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आत्मा के ईश्वर – विषयक – चिन्तन अत्यन्त सदृश स्वात्मा के साक्षात्कार का हेतु है न कि दूसरे के आत्मा के साक्षात्कार का हेतु । अतः ईश्वर – विषय – चिन्तन का स्वरूप दर्शन भी एक संगत फल है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ईश्वर प्रणिधान से चित्त एकाग्र होता है, आने वाले अन्तरायों का विनाश हो जाता है जीव स्वरूप को जानते हुए कैवल्यान्मुख हो जाता है।

मूल शब्दः– पातञ्जल, योगदर्शन, ईश्वर, स्वरूप, पतंजलि ईश्वर

प्रस्तावना
महर्षि पतञ्जलि 'ईश्वर के स्वरूप' को निम्न सूत्र से स्पष्ट करते हैं :–

''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।''[1]

अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अस्पृष्ट (रहित, असम्बद्ध) एक विशेष प्रकार का पुरुष 'ईश्वर' कहलाता है। व्यासदेव लिखते हैं कि –

''अविद्यादयः क्लेशाः ———— सपुरुष पिशेष ईश्वरः ।''[2]

ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक आशय आदि से रहित है तथा जय – पराजय, कैवल्य तथा बन्धन आदि से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ईश्वर की सामर्थ्य की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। ईश्वर 'तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति। अर्थात् ईश्वर तो सदैव मुक्त और सदैव ईश्वर रहता है। वही ईश्वरबद्ध मुक्त, अणिमादि ऐश्वर्य सम्पन्न (सामर्थ्य सम्पन्न) सर्वविध जीवरूप पुरुष की अपेक्षा विशिष्ट होने से पुरुषविशेष है।[3]

तत्त्ववैशारदीकार 'ईश्वर' के सन्दर्भ में लिखते हैं कि –

'विशिष्यत इति विशेषः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पुरुष सामान्य से विशिष्ट अर्थात् विलक्षण होने के कारण ईश्वर को 'पुरुषविशेष' कहते हैं। पतंजलि के सूत्र में विशेष पद का प्रयोग होने से समस्त व्यावर्त्य पुरुषों की व्यावृत्ति हो जाती है। प्रकृति में आत्मविषयक भावना से संस्कृत चित्त वाले योगी शरीर त्याग के पश्चात् ही प्रकृतिलय को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इनका 'पूर्वकोटिक' बन्ध तो सुस्पष्ट है। इसी से भाष्यकार ने प्रकृतिलीन आदि अनात्मचिन्तकों के 'उत्तरकोटिक' बन्ध को भी प्रदर्शित किया है और ईश्वर में पूर्वकालिक तथा उत्तरकालिक दोनों प्रकार के बन्धनों का निषेध किया है। जैसाकि तत्त्ववैशारदीकार ने स्पष्ट किया है –

''कैवल्यं प्राप्तास्तहींति प्रकृतिलयानां प्राकृतो बन्धः ..... पूर्वा– परकोटिनिषेध इति ।''[4]

ईश्वर अणिमादि ऐश्वर्य सम्पन्न योगियों से भी विलक्षण होता है। व्यासदेव लिखते हैं –

''तच्चतस्यैश्वर्यम् साम्यातिशयविनिर्मुक्तम् ..... काष्ठाप्राप्ति– रैश्वर्यस्य सः ईश्वरः ।''[5]

अर्थात् ईश्वर का ऐश्वर्य समानता एवं अतिशय से रहित है ईश्वर का ऐश्वर्य किसी के ऐश्वर्य से कम नहीं किया जा सकता है। जो ऐश्वर्य सभी ऐश्वर्यो की अपेक्षा अतिशय है, वही निरतिशय कहलाता है। अतः ऐश्वर्य की जहाँ अन्तिम सीमा है, वही ईश्वर है। जिसका ऐश्वर्य साम्य तथा अतिशय से रहित है, वही ईश्वर है। यथोक्तम् व्यासदेवेन –

''तस्माद् यस्य साम्यातिशय विनिर्मुक्तमैश्वर्य सः ईश्वरः, स च पुरुष – विशेष इति ।''[6]

ईश्वर 'सर्वज्ञ' है। अर्थात् सब कुछ जानने वाला है। महर्षि पतंजलि 'ईश्वर की सर्वज्ञता' को अधोलिखित सूत्र से स्पष्ट करते हैं ––

''तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।''[7]

अर्थात् ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज पराकाष्ठा (निरतिशयता) को प्राप्त होता है।

व्यासदेव जी 'ईश्वर की सर्वज्ञता' के सन्दर्भ में लिखते हैं –

''यदिदमतीतानागत ..... तन्त्रं प्रोवाचेति ।''[8]

यही सर्वज्ञता का बीज है। यह ज्ञान क्रमशः बढ़ता हुआ जिसमें निरतिशयरूप अन्तिम सीमा को प्राप्त होता है, वह 'सर्वज्ञ' कहलाता है। अर्थात् जहाँ ज्ञान की पराकाष्ठाप्राप्ति (अन्तिम विश्रान्ति) है, वह सर्वज्ञ है और वही पुरुष विशेष ईश्वर है। तत्त्ववैशारदीकार 'ईश्वर की सर्वज्ञता' के सन्दर्भ में लिखते हैं । श्रुति आदि शास्त्रों में 'पुरुषविशेष' के 'शिव', ईश्वर आदि संज्ञाविशेष प्रसिद्ध हैं।

जैसाकि विष्णुपुराण में कहा गया है –

''सर्वज्ञता ..... महेश्वरस्य ।''[9]

अर्थात् शास्त्रवेत्ता लोग व्यापक महेश्वर के छह अंग बताते हैं। वे छह अंग हैं– सर्वज्ञता, तृप्ति, अनाधिबोध, स्वतन्त्रता, नित्य, अलुप्तशक्ति तथा अनन्तशक्ति । तत्त्ववैशारदीकार ईश्वर के विषय में लिखते हैं कि उस नित्य तृप्त ईश्वर का अपना कोई स्वार्थ नहीं होता है। प्राणियों के प्रति अनुकम्पा ही सृष्टि रचना में प्रयोजन है।[10]

योगवार्त्तिककार 'ईश्वर' के विषय में लिखते हैं कि –

''संज्ञा ब्रह्मान्तर्यामि .....साक्षादेव ।''[11]

अर्थात् संज्ञा शब्द से 'पुरुषविशेष' के ब्रह्मा, अन्तर्यामी, परमात्मा आदि रूपों का ग्रहण होता है और 'आदि' शब्द से इसके पूर्णानन्दत्व, परमकारूणिकत्व, पारमार्थिकामत्व, जगदाधारकारणत्व आदि गृहीत होते हैं। महर्षि पतंजलि ईश्वर की त्रैकालिक गुरुता को अधोलिखित सूत्र से स्पष्ट करते हैं –

''पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।''[12]

अर्थात् ईश्वर काल से अवच्छिन्न न होने के कारण पूर्वजों (ऋषियों) का भी 'गुरु' है। व्यासदेव 'ईश्वर की त्रैकालिक गुरुता के सन्दर्भ में लिखते हैं –

''पूर्वे हि गुरवः ..... प्रत्येतव्यः ।''[13]

अर्थात् निश्चय ही सृष्टि के आदिम काल के ब्रह्मा एवं अंगिरा आदि गुरुजन काल के द्वारा अवच्छिन्न (नापे गये होते हैं। काल जिसे अपनी सीमा में बाँधने में समर्थ नहीं होता हैं, वह यह परमेश्वर ब्रह्मा आदि पूर्वजों का भी गुरु है। जैसे वर्तमान सर्ग के प्रारम्भ में ज्ञान के उत्कर्ष की स्वतः प्राप्ति से निरतिशय ज्ञान आदि का आधार ईश्वर ही सिद्ध हुआ, उसी प्रकार अतीत सर्गों में भी निरतिशय ज्ञान आदि का आधार ईश्वर ही है, ऐसा समझना चाहिए । अन्य कोई नहीं । तत्त्ववैशारदीकार तथा योगवार्त्तिककार ईश्वर की त्रैकालिक गुरुता के सम्बन्ध में व्यासदेव के विचारों का ही समर्थन करते हैं। ईश्वर का अभिधायक शब्द 'प्रणव' (ओंकार) है। ''तस्य वाचकः प्रणवः ।''[14] व्यासदेव ईश्वर की प्रणव रूप की वाचकता के सन्दर्भ मे लिखते है कि –

''वाच्यं ईश्वरः प्रणवस्य ..... प्रति जानते ।''[15]

अर्थात् प्रणव का वाच्य ईश्वर है अर्थात् प्रणव वाचक है और ईश्वर वाच्य है। प्रणव एवं ईश्वर में वाच्य वाचक सम्बन्ध है। इस ईश्वररूप वाच्य का प्रणवरूप वाचक के साथ वाच्य – वाचकभाव – सम्बन्ध को प्रदर्शित मात्र कर देता है। यह उसी प्रकार होता है जैसे लोक में पहले से ही विद्यमान पिता – पुत्र – सम्बन्ध यह इसके पिता हैं और यह इसका पुत्र है – ऐसा संकेत करके प्रकाशित किया जाता है।

कुछ विद्वान 'एतदलम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्' इस श्रुति के अनुसार 'प्रणव' को ईश्वर के 'प्रतीक' रूप से मानते हैं, क्योंकि प्रतिमा में विष्णु बुद्धि के समान ब्रह्म बुद्धि से उपास्यमान 'प्रणव' ब्रह्मज्ञान का उपाय है। कुछ विद्वानों का कथन है कि योगियाज्ञल्क्य के अष्टविग्रहोदेवोभाव– ग्राह्योमनोमयः तस्योड.कार स्मृतोनामतेनाहूतः प्रसीदति – इस वचन के अनुसार प्रणव ईश्वर का वाचक है।

ईश्वर का वाचक 'प्रणव' ही क्यों है? ऐसा प्रतिपक्षी प्रश्न करता है, प्रतिपक्षी यह प्रश्न उपस्थित करते हैं कि ईश्वर के वाचक अनेक मन्त्र हैं किन्तु कहा जा सकता है कि 'प्रणव' ईश्वर का विशेष मन्त्र है। किन्तु सूत्रकार ने तो यहाँ 'मन्त्र' शब्द का भी प्रयोग नहीं किया है। अपितु उन्होंने तो 'तस्य वाचकः प्रणवः' कहा है। ऐसा कहने में पतंजलि जी का गम्भीर चिन्तन अन्तर्निहित है। जैसे कि 'ओंकारों वै सर्वा वाक्'' अर्थात् ओंकारो ही सम्पूर्ण वाक् है। अतः सब ओंकार स्वरूप है। 'अग्निभीले' – इस प्रकार भकार से प्रारम्भ होने वाला ऋग्वेद, दधातु इस प्रकार से अन्त होने वाला सामवेद तथा 'आहम्' – इस प्रकार मकार से अन्त होने वाला यजुर्वेद – समस्त संस्कृत वाड्.मय का संग्रह करने वाला यह ओंकार है। ऐसा योगसिद्धान्तचन्द्रिका में लिखा हुआ है –

''ऋग्वेदः स्यादकाराद्य उकारान्तं यजुर्मतम् ।
सामवेदो मकारान्तः सर्वग्राही ततो ध्रुवः ।।''
(योगसिद्धान्तचन्द्रिका, पृ0 28)

सम्प्रति भाष्यकार ''प्रणव'' के प्रणिधनोपयोगी अर्थ को बताते है –
''वाच्य ईश्वर इति ।''[16] वाच्य ईश्वर के साथ वाचक प्रणव का वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध नित्य ही है। ईश्वर ही सबकी रक्षा करता है। अतः वह 'ओउम्' है । प्रणव और ईश्वर के परस्पर वाच्य – वाचक – सम्बन्ध को विशेष रूप से जानने वाले योगियों को ईश्वर की भावना की स्थापना करनी चाहिए जैसाकि पतंजलि जी ने लिखा है –

''तज्जपस्तदर्थभावनम् ।''[17]

अर्थात् उस (पूर्ववर्णित) प्रणव का जप और प्रणव के अर्थरूप ईश्वर का बारम्बार चित्त में निवेश करना योगियों का कर्तव्य है। इस प्रकार ओंकार का जप करते हुए ओंकार के अर्थरूप ईश्वर की भावना करने वाले इस योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है।
इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रणव – जप तथा ईश्वर भावना के सतत अभ्यास से योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है। इस तरह अभ्यास करते – करते योगी शीघ्र समाधि – लाभ कर लेता है। समाधि लाभ के बाद उसे आत्मतत्व का साक्षात्कार (विवेक ज्ञान) हो जाता है। फिर योगी को कैवल्यपाद की प्राप्ति हो जाती है।
ओंकार के जप के साथ ब्रह्म का ध्यान करना 'प्रणिधान' कहलाता है। यह 'प्रणिधान' 'ईश्वर' और 'प्रणव' के वाच्यवाचक भाव' सम्बन्ध को जानकर करना चाहिए। जैसाकि विज्ञानभिक्षु ने योगवार्त्तिक में कहा है –
''प्रणवजपेन सह ब्रह्मध्यानं प्रणिधानम् तच्च वाच्यवाचक भावं ज्ञात्वा कर्त्तव्यमिति समुदायार्थः ।''[18]
ईश्वर प्रणिधान से क्या फल मिलता है इस सन्दर्भ में महर्षि पतंजलि जी ने लिखा है–

''ईश्वर – प्रणिधानाद्वा ।''[19]

उपर्युक्त सूत्र के विषय में योगवार्त्तिककार विज्ञानभिक्षु ने लिखा है –

''ईश्वर प्रणिधानादिति पंचम्युक्तम ..... संप्रज्ञातपर्यन्तयोगहेतुत्त्वं ।''[20]

अर्थात् सूत्र में पंचमी विभक्ति के प्रयोग से यह बताया गया है कि 'ईश्वर प्रणिधान' असम्प्रज्ञातपर्यन्त योग का हेतु है। व्यासदेव जी ने भी लिखा है –

''प्रणिधानात् भक्तिविशेषादावर्जित .....समाधि लाभः फलं भवति ।''[21]

अर्थात् प्रणिधान रूप भक्तिविशेष से कृपापूर्वक अभिमुख हुए ईश्वर योगी को संकल्पमात्र से अनुगृहीत करता है। ईश्वर के संकल्प मात्र से योगी को समाधि लाभ और उसका फल कैवल्य शीघ्रतम प्राप्त होता है। एक अन्य स्थान पर भी महर्षि पतंजलि जी ईश्वर प्रणिधान का फल बताते हुए लिखते हैं –

''ततः प्रत्यक्चेतनाधिभमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।''[22]

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से जीवात्मा के स्वरूप का दर्शन और विघ्नों का अभाव होता है।
इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आत्मा के ईश्वर – विषयक – चिन्तन अत्यन्त सदृश स्वात्मा के साक्षात्कार का हेतु है न कि दूसरे के आत्मा के साक्षात्कार का हेतु । अतः ईश्वर – विषय – चिन्तन का स्वरूप दर्शन भी एक संगत फल है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ईश्वर प्रणिधान से चित्त एकाग्र होता है, आने वाले अन्तरायों का विनाश हो जाता है जीव स्वरूप को जानते हुए कैवल्यान्मुख हो जाता है।

सन्दर्भ

1. पातंजलयोगदर्शनम् – टी0 – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, समाधिपाद, सूत्र–24, पृ0 74
2. टी0 – डॉ0 ,, ,, व्यासभाष्यम् पृ0 75
3. टी0 – डॉ0 ,, ,, ,, पृ0 304–305
4. टी0 – डॉ0 विमला कर्णाटक, ,, तत्त्ववैशारदी, पृ0 307–308
5. टी0 – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, ,, व्यासभाष्यम्, पृ0 78
6. टी0 – ,, ,, ,, पृ0 79
7. टी0 – ,, ,, सूत्र 25 पृ0 80
8. टी0 – ,, ,, व्यासभाष्यम्, पृ0 80–83
9. टी0 – डॉ0 विमला कर्णाटक, ,, तत्त्ववैशारदी, पृ0 348
10. टी0 – डॉ0 विमला कर्णाटक, ,, ,, पृ0 350
11. टी0 – ,, ,, योगवार्त्तिकम्, पृ0 357
12. टी0 – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, ,, सूत्र – 26 पृ0 83
13. टी0 – ,, ,, व्यासभाष्यम्, पृ0 84
14. टी0 – ,, ,, सूत्र 27, पृ0 84
15. टी0 – ,, ,, व्यासभाष्यम्, पृ0 85–86
16. टी0 – डॉ0 विमला कर्णाटक, ,, योगवार्त्तिकम् पृ0 371
17. टी0 – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, ,, सूत्र – 28 पृ0 87
18. टी0 – डॉ0 विमला कर्णाटक, ,, योगवार्त्तिकम् पृ0 375
19. टी0 – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, ,, सूत्र – 23 पृ0 73
20. टी0 – डॉ0 विमला कर्णाटक, ,, योगवार्त्तिकम् पृ0 379
21. टी0 – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी ,, व्यासभाष्यम्, पृ0 85–86
22. टी0 – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, ,, सूत्र – 29 पृ0 88